



INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

INTERNATIONAL JOURNAL OF TRENDS IN EMERGING RESEARCH AND DEVELOPMENT

Volume 3; Issue 4; 2025; Page No. 399-404

Received: 10-04-2025

Accepted: 27-06-2025

Published: 30-07-2025

हिंदी साहित्य के माध्यम से दलितों और आदिवासियों की हाशिए से आत्म-खोज तक की यात्रा की जांच करना

¹Sharad Tripathi and ²Dr. Arvind Kumar

¹Research Scholar, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

²Professor, Mahakaushal University, Jabalpur, Madhya Pradesh, India

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.20111444>

Corresponding Author: Sharad Tripathi

सारांश

इस शोध प्रबंध में पांच प्रसिद्ध दलित लेखकों द्वारा लिखी गई पांच आत्मकथाओं का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है, जिसमें दलितों के प्रतिनिधित्व का विश्लेषण किया गया है, जिसमें समाज में दलितों को उच्च जातियों के 'अन्य' के रूप में माना जाता है। दलित आत्मकथाकारों ने अपने मिथकों और संस्कृति का उपयोग करते हुए, रणनीतिक रूप से अपने इतिहास का पुनर्निर्माण किया है, उत्पीड़न के खिलाफ आवाज उठाई है और मुख्यधारा के प्रामाणिक साहित्य के खिलाफ विरोध करते हुए अलग सौंदर्यशास्त्र का प्रस्ताव रखा है।

मूलशब्द: दलित, प्रबंध, सांस्कृतिक, साहित्य, प्रामाणिक, सौंदर्यशास्त्र।

प्रस्तावना

दलित साहित्य का सबसे महत्वपूर्ण योगदान हाशिये पर रहने की बदलती और गतिशील प्रकृति को उजागर करने की इसकी क्षमता है। जबकि दलितों को ऐतिहासिक रूप से समाज के हाशिये पर धकेला गया है, दलित साहित्य दर्शाता है कि ये सीमाएँ तय नहीं हैं। हाशिये पर जाने और प्रतिरोध की प्रक्रिया लगातार विकसित हो रही है, जो राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक ताकतों से प्रभावित है। दलित साहित्य सामाजिक पहचान और हाशिये पर रहने की निश्चित श्रेणियों की अवधारणा को चुनौती देता है। दलितों के अनुभव समरूप नहीं हैं, बल्कि क्षेत्रों, समुदायों और ऐतिहासिक अवधियों में भिन्न हैं। इन विविध अनुभवों का दस्तावेजीकरण करके, दलित लेखक सामाजिक बहिष्कार की जटिलता और हाशिये पर रहने की उभरती अभिव्यक्तियों को उजागर करते हैं। इसके अलावा, दलित साहित्य दलित प्रतिरोध की बदलती प्रकृति को दर्शाता है। दलित लेखकों की नई पीढ़ी वैश्वीकरण, पूंजीवाद और दक्षिणपंथी विचारधाराओं के उदय जैसे समकालीन मुद्दों से जुड़ती है, जिससे सामाजिक न्याय और समानता की आधुनिक चर्चाओं में दलित साहित्य की निरंतर प्रासंगिकता सुनिश्चित होती है

(इलैया, 1996) 171 हाशिये की सीमाओं में यह तरलता एक शक्तिशाली अनुस्मारक के रूप में कार्य करती है कि सामाजिक न्याय के लिए लड़ाई एक सतत और हमेशा विकसित होने वाली प्रक्रिया है।

आत्मकथा पर ध्यान केंद्रित करने से हटकर, यह शोधपत्र समकालीन हिंदी दलित लघुकथाओं के सौंदर्यशास्त्र, राजनीति और पहचान के विविध विमर्शों का साहित्यिक विश्लेषण प्रस्तुत करता है, जिसमें दलित लेखकों द्वारा उनके कथानक, उनके पात्रों की भाषण शैली और उनके साहित्यिक अलंकरण की भाषा के आकार में लिए गए सचेत औपचारिक निर्णय शामिल हैं। दलित साहित्यिक सिद्धांत स्वयं अक्सर, शायद जानबूझकर, क्षेत्रीय, भाषाई, वर्ग और लिंग पहचान पदों की एक श्रृंखला में दलित लेखकों द्वारा नियोजित साहित्यिक रणनीतियों की विविधता और जटिलता को खारिज करता है। मुझे लगता है कि यह एक रणनीतिक आलोचनात्मक अभियान से उत्पन्न होता है, जो दलित साहित्य की सीमाओं को कर्ई, व्यक्तिगत लेखकीय दृष्टिकोणों में विभक्त होने से बचाता है, जो विभेदित और विभाजित होने पर अपना एकीकृत राजनीतिक प्रभाव खो देते हैं।

साहित्य की समीक्षा

सत्यनारायण, के. (2017) ^[1] यह लेख समकालीन दलित साहित्य के विश्लेषण के लिए सांस्कृतिक आलोचक डीआर नागराज के सैद्धांतिक दृष्टिकोण की आलोचना प्रस्तुत करने का प्रयास करता है। नागराज के अनुसार, समकालीन दलित साहित्य विसंस्कृत दलितों का साहित्य है जो उदार राजनीति में अधिकारों और पात्रताओं को अभिव्यक्त करता है। दलित साहित्य के लिए एक अलग सौंदर्यशास्त्र के दावों को खारिज करते हुए, वे भारतीय संस्कृति के व्यापक क्षेत्र में दलित साहित्यिक योगदान को देखते हैं और भारतीय संस्कृति के लिए एक नए सौंदर्यशास्त्र के लिए तर्क देते हैं।

मंडल, सौमी (2016) ^[2] हम सभी अपने दैनिक जीवन में जानकारी एकत्र करके और उसका प्रसंस्करण करके कुछ शोध करते हैं। शोध करना निश्चित रूप से हमारे जीवन का एक हिस्सा है, जिसमें हम विभिन्न जीवन घटनाओं का विश्लेषण करने और विभिन्न संभावित निष्कर्षों पर विचार करने में लगे रहते हैं। कभी-कभी हम सड़क पर रुक जाते हैं और बाजार अनुसंधान में भाग लेने के लिए कहा जाता है, विशेष उत्पाद के नवीनतम ब्रांड का परीक्षण करते हैं और उनके परिणाम प्राप्त करते हैं। इसी तरह हम अन्य अकादमिक शोधों को भी विशिष्ट शोध क्षेत्र की आवश्यकता और मांग के संबंध में देखते हैं; चाहे वह वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक या साहित्यिक शोध हो। अधिकांशतः, सभी शोध उनके स्थापित उपयोगों और सीमाओं का पता लगाने और शिक्षा और समाज के अध्ययन में खुलने वाली कुछ नई संभावनाओं की जांच करने की उम्मीद के साथ किए जाते हैं।

मांडवकर, पवन (2016) ^[3] भारत दुनिया के सबसे तेजी से बढ़ते देशों में से एक है, फिर भी यह अपनी कठोर जाति व्यवस्था के लिए कुख्यात है। यह शोधपत्र दमन के इतिहास, दमितों की स्थिति और दलित लेखन की उत्पत्ति की जांच करता है। इसमें दलित साहित्य के आंदोलन और दायरे का अध्ययन शामिल है। यह व्यापक रूप से माना जाता है कि सभी दलित साहित्यिक रचनाओं की जड़ें अंबेडकरवादी विचारों में हैं। शोधपत्र दलितों की कठोर वास्तविकताओं और सामाजिक रूप से उत्थान के उनके सराहनीय प्रयासों का भी विश्लेषण करता है।

कुमार, अनिल. (2019) ^[4] जाति के संकट को प्राचीन काल से ही विद्वान ऋषियों, संतों, समाज सुधारकों, राजनेताओं, लेखकों, लोक कलाकारों और आम जनता द्वारा समान जोश के साथ निपटाया जाता रहा है, हालांकि उनकी समझ और उद्देश्य अलग-अलग रहे हैं। हालांकि, विशेषाधिकार प्राप्त जातियों के लेखकों ने 'इनकार' या 'जाति को परोक्ष रूप से प्रस्तुत करने' का रवैया अपनाया है। इसके विपरीत, दलित लेखकों ने जाति का डटकर मुकाबला किया है और केवल अपनी जाति के कारण होने वाले दर्द, अपमान, क्रोध, गरीबी और दुखों की अंतहीन धारा को उजागर किया है। इस प्रक्रिया में, वे जोतिबा फुले, डॉ. भीम राव अंबेडकर, पेरियार और अन्य कई लोगों और संतों जैसे दिग्गजों की दृष्टि और जोश से प्रेरित हुए हैं, खासकर भारतीय समाज के वंचित वर्ग से।

यादव, सुमन और कुमार, अमित (2023) ^[5] यह शोध हिंदी के सार्वजनिक क्षेत्र में दलित पहचान के प्रतिनिधित्व पर विशेषाधिकार प्राप्त और वंचित दोनों तरह के साहित्यकारों के विचारों की जांच करता है, विशेष रूप से हिंदी पत्रिका चाँद (मई 1927) पर ध्यान केंद्रित करता है। यह लेख चाँद में चित्रित प्रचलित जाति व्यवस्था और धार्मिक रूपांतरण के प्रति उनकी प्रतिक्रिया की जांच करता है। यह दलित पहचान को आकार देने वाले औपनिवेशिक उत्तर

भारत में जाति संघों और सामाजिक संस्थाओं की भूमिका की जांच करके अस्पृश्यता की अवधारणा का भी निरीक्षण करता है।

दलित साहित्य समाज का दर्पण

दलित साहित्य समाज के लिए एक दर्पण के रूप में कार्य करता है, जो भारत में सामाजिक संबंधों को आकार देने वाले गहरे पूर्वाग्रहों और असमानताओं को उजागर करता है। दलित साहित्य से जुड़कर, पाठकों को जाति-आधारित भेदभाव और उपनिवेशवाद और सामंतवाद की स्थायी विरासत की कठोर वास्तविकताओं का सामना करना पड़ता है। दलित लेखकों की ये रचनाएँ एक ऐसे समाज के अंतर्विरोधों को उजागर करती हैं जो आधुनिक और प्रगतिशील होने का दावा करता है, जबकि बहिष्कार और असमानता की गहरी जड़ें जमाए हुए पुरातन व्यवस्थाओं को कायम रखता है। दलित साहित्य समाज को इन असहज सच्चाइयों का सामना करने और न्याय और समानता की दिशा में आवश्यक कदमों पर विचार करने के लिए मजबूर करता है।

दलित साहित्य न केवल दलितों के अनुभवों के बारे में है, बल्कि उन व्यापक सामाजिक संरचनाओं की भी आलोचना करता है जो उन्हें हाशिए पर धकेले रखती हैं। यह पाठकों को उत्पीड़न की इन प्रणालियों में उनकी भागीदारी पर विचार करने और उन्हें बनाए रखने वाले आख्यानो पर पुनर्विचार करने के लिए मजबूर करता है। जाति-आधारित भेदभाव की मानवीय लागत को उजागर करके, दलित साहित्य सामाजिक संरचनाओं की एक शक्तिशाली आलोचना प्रस्तुत करता है और अन्याय को बनाए रखने वाले मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन का आह्वान करता है।

दलित लेखकों द्वारा दलित साहित्य के पक्ष में तर्क

दलितों द्वारा स्वयं लिखे गए दलित साहित्य के पक्ष में प्राथमिक तर्क आवाज़ की प्रामाणिकता पर टिका है। दलित लेखक जाति उत्पीड़न, भेदभाव और लचीलेपन के सजीव अनुभवों को अपनी कहानियों में लाते हैं, जो एक अंदरूनी दृष्टिकोण प्रदान करते हैं जो गहराई से व्यक्तिगत और राजनीतिक रूप से प्रभावित होता है। यह प्रत्यक्ष विवरण दलित जीवन के चित्रण में प्रामाणिकता और विश्वसनीयता की एक परत जोड़ता है, यह सुनिश्चित करता है कि प्रतिनिधित्व जाति उत्पीड़न की वास्तविकताओं में निहित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा जूठन और नामदेव ढसाल द्वारा द एक्सरसाइज ऑफ फ्रीडम जैसी रचनाएँ इस बात का उदाहरण हैं कि दलित लेखक अपने व्यक्तिगत इतिहास और सामाजिक वास्तविकताओं का उपयोग करके ऐसी कहानियाँ गढ़ते हैं जो दलित समुदायों के जीवित अनुभवों से मेल खाती हैं।

दलित लेखकों द्वारा दलित साहित्य सशक्तीकरण का कार्य करता है और उन कथाओं को पुनः प्राप्त करता है जिन्हें ऐतिहासिक रूप से हाशिए पर रखा गया है या प्रमुख जाति के दृष्टिकोणों द्वारा गलत तरीके से प्रस्तुत किया गया है। अपनी खुद की कहानियाँ बताकर, दलित लेखक अपने प्रतिनिधित्व पर नियंत्रण स्थापित करते हैं और मुख्यधारा के मीडिया और साहित्य में व्याप्त रूढ़ियों और पूर्वाग्रहों को चुनौती देते हैं। यह पुनः प्राप्ति उनके कार्यों में प्रयुक्त भाषा, रूपांकनों और सौंदर्यशास्त्र तक फैली हुई है, जो अक्सर दलित सांस्कृतिक परंपराओं और अनुभवों से ली गई हैं, जो साहित्यिक परिदृश्य को विविध आवाज़ों और दृष्टिकोणों से समृद्ध करती हैं, उदाहरण के लिए जी कल्याण राव द्वारा अछूत वसंत।

दलित साहित्य के प्रमुख लेखक और प्रमुख कृतियाँ

भारत में स्वतंत्रता-पूर्व युग सामाजिक और राजनीतिक उथल-पुथल से भरा हुआ था, जिसमें ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से स्वतंत्रता के लिए संघर्ष सामाजिक सुधार और न्याय की आंतरिक मांगों से जुड़ा हुआ था। इस संदर्भ में, दलित साहित्य एक शक्तिशाली आवाज़ के रूप में उभरा, जिसने ऐतिहासिक रूप से जाति-आधारित भेदभाव और बहिष्कार के अधीन दलित समुदाय के दर्द, संघर्ष और आकांक्षाओं को व्यक्त किया। हालाँकि "दलित साहित्य" शब्द को स्वतंत्रता के बाद प्रमुखता मिली, विशेष रूप से 1970 के दशक में दलित पैथर आंदोलन के उदय के साथ, स्वतंत्रता-पूर्व युग में कई प्रमुख हस्तियों ने अपने लेखन और सक्रियता के माध्यम से दलित अभिव्यक्ति की नींव रखी। इन लेखकों ने साहित्य को जाति व्यवस्था की आलोचना करने, सामाजिक समानता की वकालत करने और दलित पहचान और सम्मान को मुखर करने के लिए एक उपकरण के रूप में इस्तेमाल किया। यह खंड स्वतंत्रता-पूर्व युग के कुछ प्रमुख दलित लेखकों और उनकी प्रसिद्ध रचनाओं पर प्रकाश डालता है।

ज्योतिराव फुले (1827-1890)

ज्योतिराव फुले एक अग्रणी समाज सुधारक और लेखक थे जिन्होंने 19वीं सदी में निचली जातियों और महिलाओं के अधिकारों की वकालत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। उन्हें 1873 में प्रकाशित उनकी रचना गुलाम गिरी (दासता) के लिए सबसे ज़्यादा जाना जाता है, जिसमें जाति व्यवस्था और ब्राह्मणवादी वर्चस्व की धारणा की आलोचना की गई थी। फुले के लेखन क्रांतिकारी थे, जिन्होंने बाद के दलित साहित्य और सक्रियता के लिए वैचारिक आधार तैयार किया। उन्होंने अपनी शैक्षिक और सामाजिक पहलों के माध्यम से सामाजिक अन्याय के खिलाफ निचली जातियों को संगठित करने का प्रयास किया।

पंडिता रमाबाई (1858-1922)

पंडिता रमाबाई एक समाज सुधारक, शिक्षिका और लेखिका थीं, जिन्होंने दलित और हाशिए के समुदायों की महिलाओं सहित महिलाओं की मुक्ति में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 1887 में प्रकाशित उनकी रचना द हाई-कास्ट हिंदू वूमन ने हिंदू महिलाओं, विशेष रूप से विधवाओं की दुर्दशा को उजागर किया और हिंदू समाज की पितृसत्तात्मक संरचनाओं की आलोचना की। रमाबाई की महिला शिक्षा की वकालत और हाशिए के समूहों के उत्थान के उनके प्रयास उन्हें भारत में दलित और नारीवादी साहित्य के इतिहास में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में चिह्नित करते हैं।

डॉ. बी.आर. अंबेडकर (1891-1956)

हालाँकि डॉ. बी.आर. अंबेडकर को भारतीय संविधान के प्रमुख निर्माता और दलित अधिकारों के हिमायती के रूप में स्वतंत्रता के बाद के योगदान के लिए अधिक जाना जाता है, लेकिन उनके शुरुआती काम ने दलित साहित्य और विचार के लिए एक महत्वपूर्ण आधार तैयार किया। उनकी रचनाओं में जाति का विनाश (1936) शामिल है, जिसमें जाति व्यवस्था और हिंदू सामाजिक व्यवस्था की तीखी आलोचना की गई है, और द बुद्ध एंड हिज़ धम्म (1957), जिसे मरणोपरांत प्रकाशित किया गया, ने जाति उत्पीड़न से मुक्ति चाहने वाले दलितों के लिए एक वैकल्पिक धार्मिक और नैतिक ढांचा पेश किया। अंबेडकर का काम न केवल अपनी बौद्धिक कठोरता और रूढ़िवादी हिंदू धर्म को चुनौती देने के लिए बल्कि समानता और सामाजिक न्याय की दृष्टि को व्यक्त

करने के लिए भी मौलिक है जो दलित साहित्य और सक्रियता को प्रेरित करता है।

ईवी रामासामी "पेरियार" (1879-1973)

हालाँकि मुख्य रूप से एक समाज सुधारक और तमिलनाडु में आत्म-सम्मान आंदोलन के संस्थापक के रूप में जाने जाने वाले ईवी रामासामी, जिन्हें पेरियार के नाम से जाना जाता है, ने जाति और धार्मिक अंधविश्वासों पर सवाल उठाने वाले साहित्य में भी योगदान दिया। उनके भाषण और लेखन, हालाँकि पारंपरिक अर्थ में साहित्यिक नहीं थे, लेकिन ब्राह्मणवादी प्रभुत्व को चुनौती देकर और तर्कवाद, सामाजिक न्याय और समानता की वकालत करके तमिल साहित्य को प्रभावित किया। 1970 के दशक की शुरुआत में दलित पैथर्स आंदोलन के उभरने तक का स्वतंत्रता के बाद का युग भारत में दलित साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण है। इस अवधि में दलित चेतना की अभिव्यक्ति साहित्यिक कृतियों के एक बढ़ते समूह के माध्यम से हुई, जिसमें जाति उत्पीड़न, सामाजिक भेदभाव और पहचान और सम्मान की खोज के विषयों का पता लगाया गया। इस युग के साहित्य ने दलित पैथर्स की कट्टरपंथी सक्रियता के लिए आधार तैयार किया और दलित अनुभव की अधिक गहन समझ में योगदान दिया। इस अवधि के निम्नलिखित प्रमुख दलित लेखक और उनकी उल्लेखनीय कृतियाँ दलित साहित्य की रूपरेखा को आकार देने में सहायक रही हैं।

हाशिए पर पड़े लोगों की आवाज़: व्यक्ति और समुदाय

"मेरे अभागे देश के गौरवशाली जातिपुरुष!

अपनी जाति का अभिमान त्याग दो,

कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे अनिच्छुक सिर पर,

जलती हुई गालियाँ बरसानी चाहिए

जिसे अब आप दूसरों पर बरसा रहे हैं।

तुमने बहिष्कृतों को वंचित कर दिया है,

मनुष्य के सामान्य अधिकारों का

अपनी ही आँखों से

तुमने उनका दुख देखा है

और फिर भी तुमने उन्हें अपने दिल में लेने से इनकार कर दिया।

लेकिन याद रखें, कृपया याद रखें

किसी दिन तुम्हें होना ही होगा

अपमान में उन सभी के बराबर..."

(रविन्द्र नाथ टैगोर, 5 अगस्त, 1993 को 'हरिजन' में प्रकाशित 'द ग्रेट इक्वालिटी' में)

दलित साहित्य भारत में हाशिये पर पड़े लोगों के विमर्श का एक अभिन्न अंग है, जो भारत में प्रचलित जाति आधारित पदानुक्रमित सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ प्रतिरोध और दावों की एक सशक्त साहित्यिक शैली के रूप में विकसित हुआ है। औपनिवेशिक युग में 1930 के दशक से दलितों ने अपनी सामाजिक-राजनीतिक पहचान के दावे के माध्यम से अपना एक अलग स्थान बनाया है। इस आंदोलन ने दलितों के साहित्यिक आंदोलन को प्रेरित किया जो 1970 के दशक में नीचे से अपनी आवाज़ उठाने के साथ अपने विलक्षण रूपों के साथ विकसित हुआ। एडवर्ड सईद, होमी के. भाभा और गायत्री चक्रवर्ती स्पिवाक तथाकथित तीसरी दुनिया के मूल के कुछ दुर्जेय सिद्धांतकारों में से हैं, जिन्होंने हाशिये पर पड़े लोगों की आवाज़ों और उनके प्रभाव को आधुनिक साहित्य, इतिहास, राजनीति, भाषा और समकालीन नारीवाद के क्षेत्र तक विस्तारित करने का सिद्धांत दिया है। 1982

में भारतीय किसानों के सबाल्टर्न इतिहासलेखन के लिए गठित रणजीत गुहा के दक्षिण एशिया में सबाल्टर्न अध्ययन समूह के बाद, गायत्री स्पिवक की प्रसिद्ध रचना "क्या सबाल्टर्न बोल सकते हैं?" ने हाशिये पर पड़े विमर्श की समस्या के संबंध में काफी आलोचनात्मक ध्यान आकर्षित किया। जब स्पिवक का सबाल्टर्निटी का सवाल उत्तर-औपनिवेशिकता और सबाल्टर्निटी के सिद्धांत के लिए "उपनिवेशवादी-उपनिवेशित" द्वंद्वत्मकता के संदर्भ में उभरता है; दूसरी ओर, दलित सबाल्टर्निटी ने इस द्विआधारी को त्याग दिया, और इसके भीतर छिपे हुए अंतर्विरोधों को उजागर किया। लिम्बाले की टुवर्ड्स एन एस्थेटिक ऑफ़ दलित लिटरेचर: हिस्ट्री, कॉन्ट्रोवर्सीज़ एंड कंसीडरेशन्स (2007) की अपनी भूमिका में अनुवादक आलोक मुखर्जी लिखते हैं:

लिंबाले दलितों की निम्नता को औपनिवेशिक ढांचे में नहीं, बल्कि हिंदू समाज की जाति-आधारित सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक संरचना में स्थापित करते हैं। यहाँ, गाँव महानगर बन जाता है, और दलित वस्तुतः परिधि पर रहते हैं। दलित बस्तियाँ न केवल उच्च जाति की हिंदू बस्तियों से अलग हैं; वे वास्तव में गाँव की सीमा के बाहर हैं। यह भौतिक अलगाव अन्य अलगावों को दर्शाता है। (लिंबाले 2007, 2 में)

पश्चिमी और भारतीय मुख्यधारा की उच्च जाति की आत्मकथाओं के विपरीत दलित आत्मकथाओं ने व्यक्तिगत और समुदाय की हाशिए पर पड़ी आवाज़ को दर्ज किया है। अधिकांश भारतीय दलित व्यक्तिगत कथाएँ उनके विकेंद्रित स्व के बारे में हैं। वर्तमान अध्ययन के लिए चुनी गई दलित आत्मकथाओं जैसे जूठन, द आउटकास्ट, द ब्रांडेड-उचल्या, करुकू और ग्रीडिंग अप अनटचेबल्स इन इंडिया का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि नायक अपने समुदाय के विकेंद्रित स्व को प्रकट करते हैं जबकि वे अपने पड़ोसियों के साथ अपने सामाजिक और सांस्कृतिक मामलों से खुद को जोड़ते हैं। आत्मकथाकारों वाल्मीकि, लिंबाले, बामा, गायकवाड़ और वसंत मून ने दलितों और मुख्यधारा के उच्च जाति के लोगों के लिए खुद को प्रस्तुत करने के लिए एक जगह बनाई है, जैसे कि मॉर्गन, एक अफ्रीकी आत्मकथाकार, जिसने अपनी पुस्तक माई प्लेस में कथा को व्यक्तिगत से सामूहिक या सामुदायिक आत्मकथा में बदल दिया। अफ्रीकी अमेरिकी और दलित आत्मकथा में लेखक का "स्व" उसके व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों को दर्शाता है। इस संबंध में, टोनी मॉरिसन ने सही कहा है:

आत्मकथात्मक रूप अश्वेत अमेरिकी या अफ्रीकी-अमेरिकी साहित्य में क्लासिक है क्योंकि यह एक ऐसा उदाहरण प्रदान करता है जिसमें एक लेखक प्रतिनिधि हो सकता है, कह सकता है, "मेरा एकल एकान्त और व्यक्तिगत जीवन जनजाति के जीवन की तरह है; यह इन विशिष्ट तरीकों से भिन्न है, लेकिन यह एक संतुलित जीवन है क्योंकि यह एकान्त और प्रतिनिधि दोनों है।"

मुख्यधारा की आत्मकथाओं से अलग, दलित और अफ्रीकी अमेरिकी दोनों ही आत्मकथाओं के नायक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मुद्दों से जुड़े कुछ ऐसे अनुभवों का वर्णन करते हैं जो समुदाय के सदस्यों के जीवन में आम हैं, जबकि वे अपने स्वयं के "स्व" का चित्रण भी प्रस्तुत करते हैं। दलित आत्मकथाओं की यही खासियत है कि "स्व" को न केवल एक निजी करियर वाले व्यक्ति के रूप में दर्शाया जाता है, बल्कि समुदाय के एक सदस्य के रूप में भी दर्शाया जाता है, जिसमें अपने समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ गहरे जुड़ाव और जिम्मेदारियों का भाव होता है। इस प्रकार "स्व" अपने सामाजिक समूह से अलग नहीं है क्योंकि इसके सदस्य के रूप में उसे भी स्थापित सामाजिक संरचना द्वारा

इसी तरह का अमानवीय और अपमानजनक व्यवहार सहना पड़ा है।

कथावाचक के व्यक्तिगत अनुभव और उसके समुदाय के किसी अन्य सदस्य के अनुभव आमतौर पर एक जैसे ही होते हैं। नायक की व्यक्तिगत उपलब्धियाँ अक्सर सामुदायिक उपलब्धियों में बदल जाती हैं जैसा कि जूठन में देखने को मिलता है। जब वाल्मीकि हाई स्कूल की परीक्षा पास करता है, तो उसके गाँव में उसकी सफलता को सामुदायिक उपलब्धि के रूप में मनाया जाता है। इसी तरह, सामुदायिक गतिविधियों की विफलता भी कथावाचक को आहत करती है। वाल्मीकि अपनी गहरी चिंता तब व्यक्त करते हैं जब उनके समुदाय का बेरोज़गार मज़दूरों के खिलाफ़ विरोध विफल हो जाता है और लोगों को क्रूरता से प्रताड़ित किया जाता है। दलित आत्मकथाएँ इस तरह से व्यक्तिगत आवाज़ और समुदाय की आवाज़ की एकता को प्रस्तुत करती हैं। इस प्रकार, यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि दर्द और पीड़ा के बहुस्तरीय अनुभव ने नायकों को अपने व्यक्तिगत "स्व" में सामुदायिक आत्म को खोजने के लिए प्रेरित किया।

अफ्रीकी अमेरिकी आत्मकथा में 'स्व' का विश्लेषण करते हुए स्टीफन बटरफील्ड ने कहा है:

अश्वेत आत्मकथा की अपील... उनके साझा जीवन, साझा विजय और सामुदायिक जिम्मेदारी की भावना में है। स्वयं लोगों का है और लोग स्वयं में अपनी आवाज़ पाते हैं।

सामूहिक अनुभव के साझा जीवन की ऐसी ही भावना सभी पाँच चयनित दलित आत्मकथाओं में नायकों की अभिव्यक्ति के माध्यम से परिलक्षित हुई है। जब पहचान का दावा दलित साहित्य का एक महत्वपूर्ण एजेंडा बना हुआ है, दलित आत्मकथाओं में, नायकों की अपनी पहचान की धारणा उनकी जाति और समुदाय से बहुत करीब से जुड़ी हुई है। लेखक-कथाकार अपनी कलंकित जातिगत पहचान के कारण व्यक्तिगत भेदभाव का सामना करते हैं। वे अन्य उत्पीड़ित दलितों की पीड़ा के प्रति भी बहुत संवेदनशील हैं, जिनके साथ वे इस हद तक पहचान रखते हैं कि उन्हें उनका दर्द अपना ही लगता है। दलित आत्मकथात्मक आख्यानों में अस्पृश्यता के दर्द के 'सांप्रदायिक' अनुभवों के कई आख्यान हैं। जूठन में वाल्मीकि एक घटना को याद करते हैं जब दलित बस्ती के युवकों ने भीख मांगने (अवैतनिक श्रम) से इनकार कर दिया और उच्च जातियों के निर्देश पर पुलिस को बुलाया गया। वे लिखते हैं:

बस्ती से पकड़े गए लोगों को मुर्गे की तरह खड़ा किया जा रहा था, बहुत दर्दनाक तरीके से झुकाया जा रहा था। इसके अलावा, उन्हें डंडों से पीटा जा रहा था। उन्हें पीटने वाला पुलिसवाला थक रहा था। हर वार के बाद पीटा जा रहा व्यक्ति चीख रहा था। वीरता का यह उत्सव खुलेआम मनाया जा रहा था। लोग चुपचाप, बिना कुछ बोले देख रहे थे। किसी भी तरफ से कोई विरोध नहीं हुआ।

व्यक्ति और समुदाय के बीच और भी अधिक संबंध तब उजागर होते हैं जब वाल्मीकि की शिक्षा में व्यक्तिगत सफलता को पूरे दलित समुदाय की उपलब्धि के रूप में भी व्याख्यायित किया जाता है। वे कहते हैं:

हाई स्कूल का रिजल्ट अखबार में घोषित हुआ। उन दिनों नाम के साथ-साथ रोल नंबर भी छपते थे। अपना नाम देखकर मैं बहुत खुश हुआ। पिताजी ने पूरी बस्ती को मेरे रिजल्ट का जश्न मनाने के लिए दावत पर बुलाया था। उस दिन बस्ती में उत्सव का माहौल था। यह पहली बार था जब हमारी बस्ती से कोई हाई स्कूल पास हुआ था।

दलितों की व्यक्तिगत कहानियाँ व्यक्तिगत और समुदाय की हाशिए पर पड़ी स्थिति को एक साथ दर्शाती हैं। वे गाँवों और कस्बों दोनों में अपने निवास के मामले में भौतिक अलगाव के साथ हाशिए पर हैं, जैसा कि सभी चुनिंदा आत्मकथाओं में पाया जाता है। दलित सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक, राजनीतिक और बौद्धिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में हाशिए पर हैं, जिसे उच्च-जाति के सांस्कृतिक आधिपत्य के माध्यम से व्यवस्थित किया गया है। गोपाल लिखते हैं:

नैतिक आधार पर, मार्जिन और कोर के बीच का संबंध हमेशा पदानुक्रमिक प्रकृति का होता है। यह द्विभाजक है, जिसमें कोर केवल मार्जिन की कीमत पर मौजूद होता है। दूसरे शब्दों में, मार्जिन का अस्तित्व कोर की तार्किक आवश्यकता बन जाता है। (गुरु 200, 115)

स्कूलों में उच्च वर्ग के शिक्षकों और छात्रों द्वारा दलित छात्रों के साथ-साथ नायकों के साथ अछूत व्यवहार और अत्याचार; द ब्रांडेड में वर्णित उनकी क्षमता के अनुसार अच्छी नौकरियों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व से वंचित करना; और वाल्मीकि और उनके दोस्तों द्वारा चित्रित दलित बुद्धिजीवियों को मान्यता न देना आज मौजूद दलित हाशिए की यथार्थवादी तस्वीर को उजागर करता है। आत्मकथाएँ यह भी दिखाती हैं कि कैसे बामा और लिंगाले की दादियाँ अपनी दुर्दशा को एक तरह की परंपरा के रूप में स्वीकार करती हैं जो वर्षों से उनके अनुभव में चली आ रही है। इस संबंध में गोपाल गुरु कहते हैं:

दलित अपने हाशिए पर होने को स्वीकार करते हैं, खास तौर पर दो स्थितियों में। पहली स्थिति में वे खुद को असहाय, निराश पाते हैं, हाशिए पर होने को समझने और फिर उसका सामना करने की अपनी क्षमता पर विश्वास खो चुके होते हैं। वास्तव में, वे खुद हाशिए पर होने की स्थिति का बचाव करने के लिए मजबूर होते हैं। (इबिड 115-116)

आत्मकथाएँ जातिगत हिंसा के अपने आघात का वर्णन करती हैं, और दलित हाशिए पर होने के अंतर्निहित प्रतिमान को चुनौती देती हैं जिसे मुख्यधारा के धर्मग्रंथों के आख्यानो के माध्यम से सिद्धांतित किया गया है। अस्पृश्यता के आख्यान यह उजागर करते हैं कि दलित हाशिए पर कमोबेश उच्च जाति की मानसिकता में छिपे रहते हैं जो जाति व्यवस्था में अंतर्निहित है। दलित आत्मकथाकार आत्मकथा लिखने के अपने कार्य के माध्यम से अपने इतिहास का पुनर्निर्माण करते हैं। आख्यान पराधीन लोगों की मुक्ति के भविष्य के बारे में अंतर्दृष्टि भी प्रस्तुत करते हैं। व्यक्तिगत जीवन को समुदाय के साथ सचेत रूप से जोड़कर, आत्मकथाकार पाठकों को अपनी मुक्ति के लिए दलित संघर्ष के गठन में अपनी भूमिका पर विचार करने का अवसर प्रदान करते हैं।

आत्मकथात्मक लेखन कथाओं की एक प्रमुख परंपरा रही है जिसने आत्म-इतिहास के निर्माण में मदद की है। यह एक आदर्श कथा है जिसके माध्यम से विषय ने यह जानना सीखा है कि वह जीवन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आर्थिक और धार्मिक क्षेत्र में कौन है। आत्मकथात्मक लेखन के दूसरे चरण में, गुसडॉर्फ ने आत्मकथाकार को "स्वयं का इतिहासकार" बताया, जो "घटनाओं के वस्तुपरक क्रम" के संबंध में "निजी उद्देश्यों" के अपने विवरण को स्थापित करता है। अपनी तीसरी अवधि के शिखर पर, कार्ल वेनटॉब ने एक बार फिर जोर देकर कहा कि आत्मकथा "एक ऐतिहासिक शैली" है। इसके विपरीत, हालांकि, मार्क्स का सुझाव है कि अपनी शुरुआत से ही आत्मकथा/जीवनी अध्ययनों ने भी आत्मकथा को इतिहास और इतिहास-लेखन में

शामिल होने से "बचाने" की परियोजना पर काफी प्रयास किया है। अपने अस्तित्व के दौरान, आलोचकों ने जोर देकर कहा है कि इतिहास सामूहिक अनुभव पर केंद्रित होता है, अक्सर समय-सीमा में जो व्यक्तिगत जीवन-काल से आगे निकल जाता है, जबकि आत्मकथा को आत्म-चिंतनशील विश्लेषण और भावना के अधिक निजी क्षेत्रों के रिकॉर्ड के रूप में माना जाता है (मूर-गिल्बर्ट 77)। दलित आत्मकथाएँ सबाल्टर्न साक्ष्य के रूप में अपने सबाल्टर्न का पुनर्निर्माण करती हैं नीचे से इतिहासलेखन की आलोचना की जा रही है, क्योंकि कथावाचक स्वयं को इतिहास के मुख्यधारा के वृत्तांत में अनुपस्थित पाते हैं।

निष्कर्ष

दलित साहित्य आंदोलन को भी आत्मसम्मान का आंदोलन माना जाता है। दरअसल, छुआछूत के कानूनी उन्मूलन के बाद भी जाति-कलंक जस का तस बना हुआ है। विभिन्न दलित संगठनों की विफलता, दलितों में नेतृत्व का संकट और दलितों पर लगातार हो रहे हमलों ने दलित युवाओं को नेतृत्व को अस्वीकार करने और अन्याय और असमानता के खिलाफ विरोध का उग्र तरीका अपनाने के लिए मजबूर किया। कॉलेज और विश्वविद्यालयों से पढ़कर निकले संवेदनशील शिक्षित दलित युवाओं के लिए अपमान का मुद्दा बहुत दर्दनाक था। इसलिए, उनका लेखन अपमान के खिलाफ था। अश्वेतों के आत्मसम्मान आंदोलन के दौरान फैशन का प्रसिद्ध कथन यहाँ प्रासंगिक है, "सम्मान के साथ भूख गुलामी में खाई गई रोटी से बेहतर है" ।

संदर्भ

1. सत्यनारायण के. समकालीन दलित साहित्य का राजनीतिक और सौंदर्य महत्व। द जर्नल ऑफ कॉमनवेल्थ लिटरेचर। 2017;54:002198941771837. 10.1177/0021989417718378.
2. मंडल सौमी. दलित साहित्य को समझना: एक वैकल्पिक शोध पद्धति। 2016.
3. मांडवकर पवन. भारतीय दलित साहित्य पहचान की खोज से लेकर सामाजिक समानता तक. मानविकी और सामाजिक विज्ञान समीक्षा. 2016;3:42-48. 10.18510/hssr.2015.321.
4. कुमार अनिल. कल्याण राव की अनटचेबल स्पिंग में दलित विमर्श का पुनर्आविष्कार. 2019, 9-19.
5. यादव सुमन, कुमार अमित. हिंदी सार्वजनिक क्षेत्र में अछूतों की पहचान को उजागर करना: चंद के 'अछूत मुद्दे' का अध्ययन (मई 1927). दलितों की समकालीन आवाज़, 2023. 10.1177/2455328X231198658.
6. इंगोले प्रशांत. दलित और सांस्कृतिक अध्ययनों का अंतर्संबंध: अनुशासनात्मक स्थान का ब्राह्मणीकरण. जाति / सामाजिक बहिष्कार पर एक वैश्विक पत्रिका. 2020;1:91-106. 10.26812/caste.v1i2.177.
7. थियारा निकोल. सबाल्टर्न एक्सपेरीमेंटल राइटिंग: दलित लिटरेचर इन डायलॉग विद द वर्ल्ड. एरियल: ए रिब्यू ऑफ इंटरनेशनल इंग्लिश लिटरेचर. 2016;47:253-280. 10.1353/ari.2016.0003.
8. बसु तपन. संयुक्त प्रांत में हिंदी दलित साहित्य: स्वामी अछूतानंद और चंद्रिका प्रसाद जिज्ञासु, 2023, 1900-1930। 10.5040/9789389867060।
9. सिंह प्रियंका, कपूर मनिंदर. दलित साहित्य को समझना: दलित सौंदर्यशास्त्र के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण।

- मानविकी में अंतःविषय अध्ययन पर रूपकथा जर्नल। 2021, 13. 10.21659/ruptkatha.v13n4.06।
10. इंगोले प्रशांत. दलित लेखन और अननुवादनीयता पर, 2020.
 11. भट्टाचार्य पार्थ, पाल बिदिशा। "बंगाली दलित विमर्श को अनुवादात्मक सक्रियता के रूप में प्रस्तुत करना: एक दलित आत्मकथा का अध्ययन", 2020.
 12. निगम यतेंद्र, रॉय विजय. नव दलितवाद: दलित साहित्य के प्रति एक नया दृष्टिकोण. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इन्वेटिव रिसर्च एंड स्टडीज. 2014;3:262-269.
 13. चेह हेनरी, कियान येइक, कोए और जियांग केहेंग। सार्वजनिक नीति अनुसंधान में हाशिए पर पड़े अल्पसंख्यकों की आवाज़ को उजागर करना - छवि और पाठ-आधारित विगनेट विधि की एक महत्वपूर्ण समीक्षा। गुणात्मक विधियों का अंतर्राष्ट्रीय जर्नल। 2023, 22. 10.1177/16094069231163429।
 14. रऊफ अर्जुमंद, मुहम्मद यार, यूसुफ आमना. हाशिए पर पड़ी आवाज़ों को केन्द्रित करना: पाकिस्तानी कुलीन स्कूली पाठ्यपुस्तकों में राजनीतिक और सामाजिक अधिकारों की जांच करना। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस एंड एंटरप्रेन्योरशिप। 2023;4:255-274. 10.58661/ijss.v4i2.281.
 15. एल्म क्रिस्टियन, गुटर्मसेन डेविड. सैद्धांतिक व्यावसायिक नैतिकता अनुसंधान में हाशिए पर पड़े लोगों के समूहों की आवाज़ को सक्षम बनाना। जर्नल ऑफ बिज़नेस एथिक्स। 2021, 182. 10.1007/s10551-021-04973-3।

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.